© 2016 IJSRSET | Volume 2 | Issue 6 | Print ISSN: 2395-1990 | Online ISSN : 2394-4099

प्राचीन भारतीय कालविभाजन सिद्धान्त

डॉ.चन्द्रमौली रैणा

सहायकाचार्य,ज्योतिषविभाग

राष्ट्रीय संस्कृतसंस्थानम् (मानितविश्वविद्यालय)

श्रीरणवीरपरिसर, कोट-भलवाल, जम्मू

स मासान् विभजन् काले बहुधा पर्वसन्धिषु ।

तथैव भगवान् सोमो नक्षत्रैः सह गच्छति ।। [1]

भूमिका – भारतीय ज्योतिष (Indian Astrology/Hindu Astrology) ग्रहनक्षत्रों की गणना की वह पद्धति है जिसका भारत में विकास हुआ है । आजकल भी भारत में इसी पद्धति से पंचांग बनते हैं, जिनके आधार पर देश भर में धार्मिक कृत्य तथा पर्व मनाए जाते हैं । वर्तमान काल में अधिकांश पंचांग सूर्यसिद्धांत, मकरंद सारणियों तथा ग्रहलाघव की विधि से प्रस्तुत किए जाते हैं। कुछ ऐसे भी पंचांग बनते हैं जिन्हें नॉटिकल अल्मनाक के आधार पर प्रस्तुत किया जाता है, किन्तु इन्हें प्रायः भारतीय निर्णय पद्धति के अनुकूल बना दिया जाता है।

प्राचीन भारत में ज्योतिष का अर्थ ग्रहों और नक्षत्रों की चाल का अध्ययन करने के लिए था, यानि ब्रह्माण्ड के बारे में अध्ययन। कालान्तर में फलित ज्योतिष के समावेश के चलते ज्योतिष शब्द के मायने बदल गए और अब इसे लोगों का भाग्य देखने वाली विद्या समझा जाता है।

ज्योतिष या **ज्यौतिष** विषय वेदों जितना ही प्राचीन है। प्राचीन काल में ग्रह, नक्षत्र और अन्य खगोलीय पिण्डों का अध्ययन करने के विषय को ही ज्योतिष कहा गया था। इसके गणित भाग के बारे में तो बहुत स्पष्टता से कहा जा सकता है कि इसके बारे में वेदों में स्पष्ट गणनाएं दी हुई हैं। फलित भाग के बारे में बहुत बाद में जानकारी मिलती है।

भारतीय आचार्यों द्वारा रचित ज्योतिष की पाण्डुलिपियों की संख्या **एक लाख** से भी अधिक है। [1]

प्राचीनकाल में गणित एवं ज्यौतिष समानार्थी थे परन्तु आगे चलकर इनके तीन भाग हो गए।

[1] महाभारतम् –वनपर्व।

- (१) **तन्त्र** या **सिद्धान्त** - गणित द्वारा ग्रहों की गतियों और नक्षत्रों का ज्ञान प्राप्त करना तथा उन्हें निश्चित करना।
- (२) **होरा** - जिसका सम्बन्ध कुण्डली बनाने से था। इसके तीन उपविभाग थे। क- जातक, ख- यात्रा, ग- विवाह।
- (३) **शाखा** - यह एक विस्तृत भाग था जिसमें शकुन परीक्षण, लक्षणपरीक्षण एवं भविष्य सूचन का विवरण था।

इन तीनों स्कन्धों (तन्त्र-होरा-शाखा) का जो ज्ञाता होता था उसे 'संहितापारग' कहा जाता था।

तन्त्र या सिद्धान्त में मुख्यतः दो भाग होते हैं, एक में ग्रह आदि की गणना और दूसरे में सृष्टि-आरम्भ, गोल विचार, यन्त्ररचना और कालगणना सम्बन्धी मान रहते हैं। तंत्र और सिद्धान्त को बिल्कुल पृथक् नहीं रखा जा सकता। सिद्धान्त, तन्त्र और करण के लक्षणों में यह है कि ग्रहगणित का विचार जिसमें कल्पादि या सृष्टयादि से हो वह सिद्धान्त, जिसमें महायुगादि से हो वह तन्त्र और जिसमें किसी इष्टशक से (जैसे कलियुग के आरम्भ से) हो वह करण कहलाता है। मात्र ग्रहगणित की दृष्टि से देखा जाय तो इन तीनों में कोई भेद नहीं है। सिद्धान्त, तन्त्र या करण ग्रन्थ के जिन प्रकरणों में ग्रहगणित का विचार रहता है वे क्रमशः इस प्रकार हैं-

१-मध्यमाधिकार २–स्पष्टाधिकार ३-त्रिप्रश्नाधिकार ४-चन्द्रग्रहणाधिकार ५-सूर्यग्रहणाधिकार
६-छायाधिकार ७–उदयास्ताधिकार ८-शृङ्गोन्नत्यधिकार ९-ग्रहयुत्यधिकार १०-याताधिकार

'**ज्योतिष**' से निम्नलिखित का बोध हो सकता है-

- वेदाङ्ग ज्योतिष
- सिद्धान्त ज्योतिष या 'गणित ज्योतिष' (Theoretical astronomy)
- फलित ज्योतिष (Astrology)
- अंक ज्योतिष (numerology)
- खगोल शास्त्र (Astronomy)

भारतीय आर्यो में ज्योतिष विद्या का ज्ञान अत्यन्त प्राचीन काल से था। यज्ञों की तिथि आदि निश्चित करने में इस विद्या का प्रयोजन पड़ता था। अयन चलन के क्रम का पता बराबर वैदिक ग्रंथों में मिलता है। जैसे, पुनर्वसु से मृगशिरा (ऋगवेद), मृगशिरा से रोहिणी (ऐतरेय ब्राह्मण), रोहिणी से कृत्तिका (तौत्तिरीय संहिता) कृत्तिका से भरणी (वेदाङ्ग ज्योतिष)। तैत्तरिय संहिता से पता चलता है कि प्राचीन काल में वासंत विषुवद्दिन कृत्तिका नक्षत्र में पड़ता था। इसी वासंत विषुवद्दिन से वैदिक वर्ष का आरम्भ माना जाता था, पर अयन की

गणना माघ मास से होती थी। इसके बाद वर्ष की गणना शारद विषुवद्दिन से आरम्भ हुई। ये दोनों प्रकार की गणनाएँ वैदिक ग्रंथों में पाई जाती हैं। वैदिक काल में कभी वासंत विषुवद्दिन मृगशिरा नक्षत्र में भी पड़ता था। इसे बाल गंगाधर तिलक ने ऋग्वेद से अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया है। कुछ लोगों ने निश्चित किया है कि वासंत विषुबद्दिन की यह स्थिति ईसा से ४००० वर्ष पहले थी। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि ईसा से पाँच छह हजार वर्ष पहले हिंदुओं को नक्षत्र अयन आदि का ज्ञान था और वे यज्ञों के लिये पत्रा बनाते थे। शारद वर्ष के प्रथम मास का नाम अग्रहायण था जिसकी पूर्णिमा मृगशिरा नक्षत्र में पड़ती थी। इसी से कृष्ण ने गीता में कहा है कि 'महीनों में मैं मार्गशीर्ष हूँ'।

प्राचीन हिंदुओं ने ध्रुव का पता भी अत्यन्त प्राचीन काल में लगाया था। अयन चलन का सिद्धान्त भारतीय ज्योतिषियों ने किसी दूसरे देश से नहीं लिया; क्योंकि इसके संबंध में जब कि युरोप में विवाद था, उसके सात आठ सौ वर्ष पहले ही भारतवासियों ने इसकी गति आदि का निरूपण किया था। वराहमिहिर के समय में ज्योतिष के सम्बन्ध में पाँच प्रकार के सिद्धांत इस देश में प्रचलित थे **- सौर, पैतामह, वासिष्ठ, पौलिश ओर रोमक**। सौर सिद्धान्त संबंधी सूर्यसिद्धान्त नामक ग्रंथ किसी और प्राचीन ग्रंथ के आधार पर प्रणीत जान पड़ता है। वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त दोनों ने इस ग्रंथ से सहायता ली है। इन सिद्धांत ग्रंथों में **ग्रहों के भुजांश, स्थान, युति, उदय, अस्त** आदि जानने की क्रियाएँ सविस्तर दी गई हैं। अक्षांश और देशातंर का भी विचार है।

पूर्व काल में देशान्तर लंका या उज्जयिनी से लिया जाता था। भारतीय ज्योतिषी गणना के लिये पृथ्वी को ही केंद्र मानकर चलते थे और ग्रहों की स्पष्ट स्थिति या गति लेते थे। इससे ग्रहों की कक्षा आदि के संबंध में उनकी और आज की गणना में कुछ अन्तर पड़ता है। क्रांतिवृत्त पहले २८ नक्षत्रों में ही विभक्त किया गया था। राशियों का विभाग पीछे से हुआ है। वैदिक ग्रंथों में राशियों के नाम नहीं पाए जाते। इन राशियों का यज्ञों से भी कोई संबंध नहीं हैं। बहुत से विद्वानों का मत है कि राशियों और दिनों के नाम यवन (युनानियों के) संपर्क के पीछे के हैं। अनेक पारिभाषिक शब्द भी यूनानियों से लिए हुए हैं, जैसे,— होरा, दृक्काण केंद्र, इत्यादि

तथा च स्मर्यते- योजनानां सहस्रे द्वे द्वे शते द्वे च योजने।

एकेन निमिषार्धेन क्रममाण नमोस्तु ते ।। (सा.भा.ऋ.)

आर्यभट्ट को पृथिवी के स्व अक्ष पर घूमने का भी पता था –

अनुलोमगतिनौस्थः पश्यत्यचलं विलोमगं यद्वत्।

अचलानि आनि तद्वत् समपश्चिमगानि लङ्कायाम् ।।

इस प्रकार नाव की उपमा से उन्होने इस सिद्धान्त को सिद्ध किया सूर्य सिद्धान्त (2.24) में एक ऐसा सूत्र है जो बिना बीज गणित के बन ही नहीं सकता। अतः इसका श्रेय भी भारतीय ज्योतिष को ही है। ज्यामिति के क्षेत्र में आर्यभट्ट ने व्यास परिधि के अनुपात का पता लगा कर पाई का उदाहरण प्रस्तुत किया था –

चतुरधिकं शतमष्टगुणं द्वाषष्टिस्तथा सहस्राणाम्।

अयुतद्वयविष्कम्भस्यासन्नो वृत्तपरिणाहः ।।

प्राचीन भारतीय कालविभाजन सिद्धान्त –

प्राचीन काल में कालविभाजन अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ किया गया था। गैलेलियो(ई.स.1564-1642) पहली बार समय का विभाजन सेकेण्ड के रूप में किया था ऐसा पाश्चात्य मनीषियों का अभिप्राय है। किन्तु महाभारत में हम देख सकते है कि सेकेण्ड का भी विभाग किया हुआ है। जैसे –

काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव त्रिंशत् काष्ठा गणयेत् कलां ताम्।

त्रिंशत्कलाश्चपि भवेन्मुहूर्तो भागः कलायाः दशमश्च यः स्यात् ।।

त्रिंशन्मुहूर्तन्तु भवेदहश्च रात्रिश्च संख्या मुनिर्भिः प्रणीता।

मासः स्मृतो रात्र्यहनी च त्रिंशत् संवत्सरो द्वादशमास उक्तः ।।

संवत्सरे द्वे त्वयने वदन्ति संख्याविदो दक्षिणमुत्तरश्च ।। महाभारतम् ।।

इसका विवरण निम्नलिखित तालिका से प्रतिपादित किया जाता है –

1/ 4 निमेष = 1 त्रुटि

2 त्रुटि = 1 लव

2 लव = 1निमेष

5 निमेष = 1 काष्ठा

10 काष्ठा = 1 कला

40 कला = 1 नाडिका

2 नाडिका = 1 मुहूर्त

15 मुहूर्त = 1 अहोरात्र

7 अहोरात्र = 1 सप्ताह

15 अहोरात्र = 1 पक्ष

2 पक्ष = 1 मास

12 मास = 1 वर्ष

दिन एवं मासों का नाम निश्चित करने के लिए भी चन्द्रमा की कलाओं ग्रहों और नक्षत्रों की गति पर आधारित पूर्णतया वैज्ञानिक पद्धति विकसित की गई थी। यह जानकर आश्चर्य होता है कि काल का यह अति सूक्ष्म ज्ञान कैसे

सम्भव हो सका। न केवल वेदांग ज्योतिष एवं ज्योतिष में ही इसका उदाहरण मिलता है अपि तु याज्ञवल्क्य स्मृति में नवग्रहों का स्पष्ट उल्लेख मिलता है –

सूर्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो बृहस्पतिः।

शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः॥

आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ में आर्यभट्टीय के चतुर्थ प्रकरण गोलपाद में यह घोषणा की है कि पृथ्वी गोल है और वह अपनी धुरी पर परिभ्रमण करती रहती है ऐसा प्रतिपादन करने वाले विश्व के प्रथम व्यक्ति थे। उन्होनें पृथवी के आकार, गति एवं परिधि 4967 योजन और व्यास 1581 योजन बताया है। एक योजन का मान 5 मील होने के अनुसार दोनों क्रमशः 24835 मील और 7905 मील होते है।

सूर्यग्रहण और चन्द्रग्रहण का कारण –

आर्यभट्ट नें सूर्यग्रहण और चन्द्रगहण का सही कारण बताते हुये निरुपित किया है कि चन्द्रमा और पृथ्वी की परछाई पड़ने पर ग्रहण लगता है , राहु और केतु के प्रकोप से नही। उन्होनें प्रतिपादित किया है कि सूर्य से कितने अन्तर पर चन्द्रमा , मंगल और बुध आदि दृष्ट होते है। उन्होनें उत्तरीध्रुव (सुमेरु) और दक्षिणी ध्रुव (बड़वामुख) की स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। भास्कराचार्य के अनुसार चन्द्रग्रहण में चन्द्र ग्राह्य है और ग्राहक है भूच्छाया जिसको ग्रन्थो में भूभा कहा गया है। जैसे-

भानोर्बिम्बपृथुत्वादपृथुपृथिव्याः प्रभा हि सूच्यग्रा।

दीर्घतया शशिकक्षामतीत्य दूरं बहिर्याता॥

सूर्यग्रहण में सूर्य ग्राह्य है और ग्राहक चन्द्रबिम्ब है। अमान्त में रविकक्षा के नीचे अपनी कक्षा में स्थित चन्द्र मेघ की तरह रविबिम्ब का आच्छादन करता है। यथा –

छादयत्यर्कमिन्दुः विधुं भूमिभा

छादकश्छाद्यमानैक्यखण्डं कुरु।

तच्छरोनं भवेच्छन्नमेतद्यथा

ग्राह्यहीनावशिष्टं तु स्वच्छन्नकम्॥

भट्टकमलाकर के अनुसार आकाशस्थ ग्रहबिम्बों में केवल सूर्य ही प्रकाशमान ग्रह है। अन्य सभी सूर्यरश्मि से प्रकाशित होकर चमकते रहते है। यथा –

तेजसां गोलकः सूर्यः ग्रहाण्यम्बुगोलकाः।

प्रभावन्तो हि दृश्यन्ते सूर्यरश्मिप्रदीपिताः॥

महाभारत में ग्रहों और नक्षत्रों के बीच विद्यमान दूरी और उनकी गति का स्पष्ट प्रमाण मिलता है। इस ब्रह्माण्ड के सभी ग्रह और नक्षत्र परिभ्रमण करते है। यथा –

एवं त्वहरहर्मेरुं सूर्यचन्द्रमसौ ध्रुवम्।

प्रदक्षिणमुपावृत्य कुरुतः कुरुनन्दन ।।

ज्योतींषि चाप्यशेषेण सर्वाण्यनघसर्वतः।

परियान्ति महाराज गिरिराजं प्रदक्षिणम् ।। 28।। महाभारतम्, वनपर्व, 163 अ. ।।

अर्थात् सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन इस मेरु गिरि का परिभ्रमण करते है। अन्य नक्षत्र भी इन की परिक्रमा करते है। इसी अध्याय में वेदव्यास ने अहोरात्रि और मासों के परिवर्तन का कारण में सूर्य और चन्द्रमा को ही माना है। यथा –

स मासान् विभजन् काले बहुधा पर्वसन्धिषु।

तथैव भगवान् सोमो, नक्षत्रैः सह गच्छति ।। 32 ।।

अर्थात् चन्द्रमा नक्षत्रों के साथ मेरुपर्वत की परिक्रमा करता है और पर्वसन्धि समय मे मासों का विभाजन करता है।

सन्दर्भग्रन्थसूची-

1. महाभारतम्- गीता प्रेस गौरखपुर, प्रकाशन।
2. सिद्धान्तशिरोमणिः- भास्कराचार्यरचितम्, मोती लाल, बनारसीदास, दिल्ली।
3. आर्यभट्टीयम् – आर्यभट्ट, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
4. सूर्यसिद्धान्तः कपिलेश्वर शास्त्री, चौखम्भा संस्कृतसंस्थान वाराणसी।
5. मुहूर्तचिन्तामणि श्रीरामदैवज्ञविरचितं, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
6. मूहूर्तमार्तण्डः : दैवज्ञनारायण विरचितौ , चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।
7. होरारत्नम् : श्री मन्मिश्र बलभद्रमिश्र विरचितं , मोती लाल, बनारसीदास, दिल्ली।